अध्याय - प्रथम

प्रस्तावना

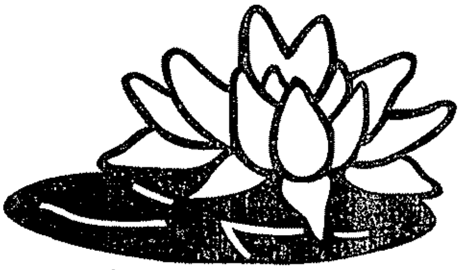

अध्याय प्रथम

प्रस्तावना

1.1 भूमिका

हमारे देश में प्राचीन समय से यह प्रसिद्ध रहा है कि पशु और मनुष्य में आहार, निद्रा, भय, भोग आदि की विशेषताएँ समान रूप से पाई जाती हैं। लेकिन शिक्षा और ज्ञान ही एक ऐसी विशेषता है जो मनुष्य को मनुष्य बनाए हुए हैं। अस्तु स्पष्ट है कि मानव जीवन की सार्थकता के लिए शिक्षा अत्यंत आवश्यक है।

काका साहब कालेलकर अपनी अलंकारित गुजराती भाषा में शिक्षा की व्याख्या करते हुए लिखते हैं:

"शिक्षा कहती है, मैं विज्ञान नहीं, सत्ता की दासी नहीं, किसी शास्त्र की गुलाम नहीं अपितु मैं मानव के हृदय, बुद्धि और अन्य समग्र शक्तियों की स्वामिनी हूँ। मानवशास्त्र और समाजशास्त्र मेरे दो चरण हैं। कला और हुनर मेरे हाथ हैं, विज्ञान मेरा मस्तिष्क है, धर्म मेरा हृदय है, निरीक्षण व तर्क मेरे चक्षु हैं, इतिहास मेरे कान हैं, आजादी मेरा श्वास है, उत्साह व उद्योग मेरे फेफड़े हैं, धैर्य मेरा व्रत है, श्रद्धा मेरी पूंजी है। मैं समग्र कामनाएँ पूर्ण करने वाली जगदम्बा हूँ। सच्चे अर्थ में शिक्षा जगदम्बा हूँ।"

इस प्रकार शिक्षा हम सबके जीवन का अनिवार्य अंश है। शिक्षा का महत्व दिनों दिन बढ़ता ही चला जा रहा है। 'शिक्षा' शब्द संस्कृत के शिक्ष् धातु से बना है। शिक्षा का अर्थ है सीखना। सीखने की प्रक्रिया शिशु के जन्म से मृत्यु तक चलती रहती है। शिक्षा आजीवन चलने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक आदि विकास सम्पर्क रीति से होता है। इसके फल स्वरूप व्यक्ति अपने आपको वातावरण से अनुकूल करके जीवन को सफल बनाता है और अपने व्यवहार में परिवर्तन तथा परिवर्धन लाता है। जिससे व्यक्ति, जाति, राष्ट्र तथा विश्व सभी का हित होता है।

शिक्षा का उपरोक्त अर्थ इस ओर संकेत करता है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का वैयक्तिक और सामाजिक विकास करना है। परंतु आज शिक्षा के ये समस्त उद्देश्य केवल सिद्धांत बनकर रह गये हैं। व्यवहार में इनकी पूर्ति कम ही दिखाई पड़ती है। शिक्षा के स्तर में अनवरत कमी होती जा रही है। छात्रों में असंतोष, मानसिक तनाव तथा अनुशासनहीनता दिनों दिन बढ़ती जा रही है। यही एक प्रश्न अपने आप आ उपस्थित होता है कि यह सब क्यों है? निश्चय ही इसके कई कारण हो सकते हैं – राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा विद्यालय संबंधी...आदि। विद्यालय संबंधी कारणों में शिक्षक भी अपने आप आ जाता है।

एडम्स महोदय का भी विचार है कि शिक्षा में दो धुरी होती हैं एक ओर शिक्षार्थी और दूसरी ओर शिक्षक। बालक के व्यक्तित्व के विकास में गुरू का महत्व सार्वकालिक है प्राचीन भारतीय संस्कृति में गुरू को ब्रह्मा, विष्णु, महेश के समकक्ष माना गया है। कबीर दासजी के अनुसार तो गुरू गोविन्द से भी ऊपर है।

गुरू गोविन्द दोउ खडे काके कागू पाय।
बलिहारी गुरू आपकी गोविन्द दियो बताय।।

प्राचीन समय में शिक्षक ही शिक्षण का सर्वेसर्वा माना जाता था और उसी के अनुसार शिक्षा का रूप होता था। किन्तु शिक्षा मनोविज्ञान के प्रभाव से आज ऐसा नहीं है। फिर भी विधि का ज्ञाता शिक्षार्थी नहीं अब भी शिक्षक ही माना जाता है। शिक्षक अपने शिक्षार्थियों को उत्तम विधियों द्वारा पाठ्यक्रम को हृदयंगम कराते हुए उन्हें लक्ष्य तक पहुँचाने में पथ प्रदर्शक एवं सहायक होता है।

शिक्षा समाज और राष्ट्र के निर्माण का मूलाधार है। शिक्षक पर ही समाज की उन्नति निर्भर होती है। भवन निर्माण में जो स्थान ईंटों का है, राष्ट्र निर्माण में वही स्थान शिक्षक का है। क्योंकि शिक्षक बालकों को समुचित शिक्षा प्रदान कर देश का भविष्य उज्जवल करता है। शिक्षा के उद्देश्य देश,

काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं जो समाज की परिवर्तित आवश्यकताओं के पूरक होते हैं। शिक्षा हमें इस योग्य बनाती है कि परिस्थितियों के अनुरूप उचित निर्णय लेकर सही मार्ग का चयन करें और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न अवसरों पर सही विकल्प का चुनाव कर सकें।

शिक्षक वह धुरी है जिसके चारों और शैक्षिक गतिविधियाँ क्रियाशील रहती है। किसी भी राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली में सबसे महत्पूर्ण स्थान शिक्षक का होता है। शाला की उन्नति अथवा विकास के लिए उचित पाठ्यक्रम, श्रेष्ठ पाठ्यपुस्तक, उत्तम शिक्षा साधन तथा उपयुक्त शालागृहों की आवश्यकता तो है ही परंतु उससे कई ज्यादा आवश्यकता है उपयुक्त शिक्षक की।

अच्छे शिक्षकों के अभाव में किसी भी देश की शिक्षा पद्धति निर्जीव और निस्तेज हो जाती है। अंग्रेजों के शासन काल में अध्यापकों की स्थिति शोचनीय हो गयी थी। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार द्वारा नियुक्त राधाकृष्णन आयोग (1948-49), मुदालियर आयोग (1952-53) कोठारी आयोग (1964-66) सभी ने इस बात पर बल दिया कि अध्यापकों की आर्थिक सामाजिक और व्यावसायिक दशाओं को सुधारे बिना शिक्षक का उत्तरदायित्व अपूर्ण ही रहेगा। देश के सारे शिक्षा शास्त्री, विद्वान राजनीतिज्ञ और प्रशासक यह स्वीकार करते हैं कि देश जिस संकट कालीन दौर से गुजर रहा है उसमें अध्यापक ही उसे बलं प्रदान कर सकते हैं।

शिक्षक के लिए यह कहना सार्थक होगा कि वह समाज का शिल्पी होता है राष्ट्र विकास की धुरी होता है, देश के भावि कर्णधारों और उनके भविष्य का निर्माता होता है। वही समाज या राष्ट्र के मूल्यों को अक्षुण्ण बनाए रखने हेतु प्रयासरत रहता है। वह समाज का सेवक भी है जो समाज की धड़कन को पहचान कर उसे नया जीवनदान देता है। नित्य नवीन प्रेरणा भी प्रदान करता है। शिक्षक में ऐसी अनूठी एवं अलौकिक शक्ति है, जिसके बल पर वह छात्रों में शीर्षस्थ सद्गुणों का बीजारोपण कर उसका प्रारब्ध तक बदल सकता है।

गुकारश्चान्धकारश्च रूकारस्तन्नरोधकृत्।
अंधकार विनाशत्वाद् गुरू रित्यक्षरद्वयम्।।

अर्थात् शिक्षक को अज्ञान के अंधकार को दूर कर सद्गुणों को जागृत करने वाला, आशा का संचार करने वाला माना गया है।

बालक के सर्वांगीण विकास में शिक्षक का महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षक ही समग्र विद्यालयीन योजनाओं को संपूर्ण व्यावहारिक रूप प्रदान करता है। जिस प्रकार विद्यालय जीवन में प्रधानाध्यापक मस्तिष्क के रूप में होता है। उसी प्रकार शिक्षक आत्मा स्वरूप होता है।

आत्मा बिना शरीर (विद्यालय) निर्जीव होता है। शिक्षक ही विद्यालय जीवन का गति दाता है। विद्यालय जीवन में शिक्षक का महत्व निम्न बिंदुओं से स्पष्ट होता है।

भविष्य निर्माता

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार " अध्यापक वह प्रकाशपुंज है जो स्वयं जलकर औरों को भी प्रकाश प्रदान करता है।"

डॉ. जाकिर हुसैन के अनुसार " वास्तव में शिक्षक हमारे भाग्य निर्माता है, समाज अपने विनाश पर उनकी उपेक्षा कर सकता है।"

प्रो. हुमायु कबीर ने लिखा है "शिक्षक राष्ट्र के भाग्य निर्णायक होते है। वे ही पुनः निर्माण की पूँजी है।"

राष्ट्र का मार्गदर्शक

डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार "समाज में अध्यापक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्परायें और तकनीकी कौशल पहुंचाने का केन्द्र है और सभ्यता के विकास को प्रज्जवलित रखने में सहायता देता है, वह सभ्यता एवं संस्कृति का संरक्षक तथा परिमार्जनकर्ता है। वह बालक का ही मार्गदर्शक नहीं वरन् संपूर्ण राष्ट्र का मार्गदर्शक है।"

राष्ट्र की उन्नति में स्थान

जॉन डी.वी. के अनुसार "शिक्षक सदैव देवता का पैगम्बर होता है। समाज सुधारक एवं समाज सेवक के रूप में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। वह विद्यालय में ऐसा सामाजिक वातावरण निर्मित करता है, मित्र व पथ प्रदर्शक के रूप में वह ऐसे अवसर प्रदान करता है जिससे छात्र भाषा, धर्म, रंग, संप्रदाय, जाति, अवस्थाएं और अन्य संकीर्णताओं से ऊपर उठकर सही अर्थ में शिक्षा के मुख्य लक्ष्य 'व्यक्ति को इन्सान बनाना' की प्राप्ति हेतु सक्रिय हो।"

अध्यापक का राष्ट्र की प्रगति में महत्वपूर्ण स्थान है कहा भी जाता है कि एक आदमी हत्या करके एक जीवन का अंत करता है किन्तु शिक्षक गलत शिक्षा देकर संपूर्ण परिवार की हत्या करते हैं तथा संपूर्ण राष्ट्र का अहित करते हैं। इसीलिए शिक्षक का परम कर्तव्य ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना है जो राष्ट्र की प्रगति के आधार बन सके।

संस्कृति का पोषक

गारफोर्थ के अनुसार "शिक्षक के माध्यम से ही संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती है, समाज की परम्परायें नवयुवकों को ज्ञात होती हैं तथा वह नई एवं रचनात्मक उत्तरदायित्वपूर्ण ऊर्जाएं छात्रों को सौंपता है।"

शिक्षा का रक्षक

शिक्षक संस्कृति का परिमार्जक एवं रक्षक है। समाज में प्रचलित शिक्षा का रक्षक भी शिक्षक ही होता है। वास्तव में शिक्षा की गुणात्मक स्थिति शिक्षकों की स्थिति तथा उनके गुणात्मक पहलु पर निर्भर है। शिक्षक अपने सद्प्रयासों से बालक का सफल मार्गदर्शन कर उसके अस्तित्व का संतुलित विकास कर उसे सफल नागरिक बनाता है। इस रूप में वह न केवल बालक का कल्याण करता है वरन् समुचे समाज तथा राष्ट्र की भलाई करता है इसीलिए तो भारतीय दर्शन में उसे ब्रह्म का रूप दिया गया है। यह ब्रह्म स्वरूप शिक्षक सृजनात्मक तथा विध्वंसात्मक शक्तियों का प्रदाता तथा स्त्रोत है। इसी की प्रदत्त शिक्षा के आधार पर हम कल्याणकारी तथा विनाशकारी शक्तियों का निर्माण करते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि यदि विनाश पर आ जाये तो शिक्षक एक चिकित्सक, भवन निर्माता तथा पूजारी से भी अधिक विनाश कर सकता है।

एक अध्यापक के प्रभाव का कहाँ अंत होगा यह कहा नहीं जा सकता क्योंकि वह अपने छात्रों पर अपने प्रभावों की अमीट छाप छोड जाता है।

आज अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के माहौल में राष्ट्र की धर्मनिरपेक्षता, प्रजातान्त्रिक गणराज्य की विशेषताओं को बनाए रखने के लिए देशभक्त नागरिकों की आवश्यकता है और ऐसे नागरिकों को तैयार करने का कार्य शिक्षक के अलावा अन्य कोई व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है। शिक्षक ही इस पुनीत कार्य को कक्षा के अन्दर या बाहर दोनों तरह से कर सकता है। वह न केवल कक्षा के वातावरण को संशोधित या परिमार्जित करता है वरन् संपूर्ण विद्यालयी वातावरण को संवर्धित करने के लिए प्रयासरत रहता है।

भले ही आज की विषम परिस्थितियों तथा दावाग्नि की तरह फैलते उपभोक्तावाद ने शिक्षक को भी व्यावसायिक बनने को बाध्य किया है किन्तु बालक के विकास में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी, है और रहेगी।

1.2 शिक्षक और अध्यापन व्यवसाय

शिक्षा में शिक्षक एवं अध्यापन व्यवसाय एक सिक्के के दो पहलू हैं। जिनको अलग करना असंभव है। अध्यापन का अर्थ होता है छात्रों को कुछ विशिष्ट विषयों का ज्ञान प्रदान करना। शिक्षा में वस्तुतः हम इस ज्ञान को सम्मिलित कर लेते हैं लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है शिक्षा एक त्रिध्रुवी प्रक्रिया है उसके मुख्य तीन घटक होते हैं अध्यापक–पाठ्यक्रम–छात्र। शिक्षा में शैक्षिक क्रियाएँ जो पाठ्यक्रम से संबंधित होती है तथा सह शैक्षिक क्रियाएँ जो छात्रों और अध्यापकों के अनुभव विश्व तथा व्यक्तित्व घटकों से संबंधित होती हैं। शिक्षा बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने के लिए अद्भुत भूमिका निर्वाह करती है। अध्यापकों को सदा केवल विषयों के अध्यापन तक ही सीमित न रहकर बालकों के सर्वांगीण विकास में अपना योगदान देने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

शिक्षक राष्ट्र का हितैषी है, छात्रों के उन्नयन के लिए सदैव प्रयत्नशील भी रहता है। बस आवश्यकता है तो छात्रों से प्रेम करने की, उनके साथ समय बिताने की, छात्रों के साथ कार्य करने की, आवश्यकतानुसार समस्या समाधान करने की, स्वयं के चरित्र से छात्रों के चरित्र को उबारने की। जब

तक्षशिला का एक गुरू सैनिक को राजा बना सकता है, संपूर्ण देश को धन संपन्न बना सकता है, तो शिक्षक भावि पीढ़ी के उत्थान और राष्ट्र निर्माण के लिए चाणक्य की सी शक्ति को क्यों नहीं धारण कर सकते हैं?

चाणक्य ने भी कहा है " शिक्षक कभी साधारण नहीं होता प्रलय और निर्माण उसकी गोद में पलते हैं।"

शिक्षक का कार्य निष्पादन शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक महत्वपूर्ण निवेश है। शिक्षकों की चयन विधि, भर्ती गुणवत्ता की दृष्टि से समय की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं हो रही है। शिक्षक से बडी आशा लगाई जाती है तथापि नौकरी की दृष्टि से शिक्षा का व्यवसाय अंतिम विकल्प माना जाता है। इसीलिए हमारी विसंगति यह है कि हमारे पास श्रेष्ठ ग्रंथ एवं अनुसंधान तो उपलब्ध है परन्तु शिक्षक उदासीन है।

ऊपर के कथन को पूरे शिक्षक वर्ग की बुराई न समझ लिया जाए इसलिए यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि वर्तमान परिस्थिति में जो भी गुणता दिखाई देती है वह वास्तव में ऐसे बहुत से शिक्षकों की प्रतिबद्धता, परिश्रम तथा नवत्रवर्तन की क्षमता के कारण ही है जो अपने शिष्यों के कल्याण के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध हैं। इसीलिए किसी भी राष्ट्र का हित उस राष्ट्र के अध्यापक के हित पर निर्भर है। एक अध्यापक अपने जीवन काल में हजारों विद्यार्थियों को शिक्षित करता है। अतः अध्यापक ही हमारे भविष्य का संरक्षक है और इसीलिए अध्यापक की ओर ध्यान देना अपने भविष्य की ओर ध्यान देना है। और विशेष रूप से प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के ऊपर क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में प्राथमिक शिक्षा प्रथम प्राथमिकता की वस्तु है। यह पहली सीढ़ी है, जिसे सफलतापूर्वक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ संबंध प्राथमिक शिक्षा का है उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं है। इसका संबंध किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग से न होकर देश की पूरी जनसंख्या से होता है। जीवन की आधार शिला वास्तव में प्राथमिक शिक्षा से ही रखी जाती है। इस अवधि में बच्चों में मस्तिष्क संवेदनशीलता बढ़ती है और उनका पूर्ण रूप से विकास होता है। उनमें जो आदतें एवं सामाजिक विश्वास इस अवधि में पैदा किया जाता है वह संपूर्ण जीवन में बना रहता है।

यह निर्विवाद है कि शिक्षा के स्तर और राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के योगदान को जितनी भी बातें प्रभावित करती है उनमें शिक्षकों के गुण, उनकी क्षमता और उनका चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। अतः आवश्यक है कि योग्यता वाले अध्यापक हो, उन्हें सर्वोत्तम व्यावसायिक साधन उपलब्ध कराये जाये और ऐसी संतोषप्रद स्थितियां बनायी जायें जिनमें वे प्रभावी ढंग से कार्य कर सकें।

हमारा विश्वास है कि जब तक अध्यापन कार्य अपना दर्जा नहीं बना लेता, जो कि व्यक्ति और कार्य के प्रकार दोनों में प्रतिबिंबित हो तब तक वह अपनी आर्थिक, सामाजिक स्थिति सुदृढ नहीं बना सकता है। हमें इस तथ्य का सामना करना होगा कि अध्यापक और शिक्षाविद् ही मुख्यतः अध्यापन के व्यावसायिक स्तर के लिए जिम्मेदार हैं।

1.3. समस्या कथन

शिक्षक शिक्षा के विस्तार के कारण अच्छे शिक्षक मिलना कठिन हो गया है। वर्तमान समय में कोई भी व्यक्ति अपने बच्चों को अध्यापक बनाना नहीं चाहते। हर कोई अपने बच्चों को डॉक्टर या इंजीनियर ही बनाना चाहता है। अच्छे शिक्षक के प्रशिक्षण की आवश्यकता उपस्थित हुई हैं। सिर्फ शिक्षको की ज्यादा तादात बढ़ाने से कोई फायदा नहीं है बल्कि उनकी गुणवत्ता में सुधार लाना आवश्यक है। किसी कार्य की सफलता के लिए सकारात्मक अभिवृत्तियों का होना आवश्यक है। आज जबकि सरकार ने भी 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का उपबंध किया है, ऐसे में शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। सीमित संसाधन होने पर भी देश के सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ पाना तभी संभव हो पाएगा जबकि शिक्षकों में सकारात्मक अध्यापन अभिवृत्तियाँ तथा उनमें अध्यपन व्यवसाय के प्रति वचनबद्धता एवं समर्पण का भाव हो। सकारात्मक अध्यापन अभिवृत्ति के कारण अध्यापकों का कार्य बहुत ही आसान हो जाता है। उनको अपने व्यवसाय से पूर्ण संतोष भी मीलता है और सम्मान व सुफल प्राप्त होता है। नकारात्मक अध्यापन अभिवृत्ति अध्यापन कार्य को कठिन और थकान देनेवाला

बना देती हैं। विद्यार्थियों के प्रति व्यवहार पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। शिक्षकों को प्रभावी ढंग से कार्य करने के लिए उचित माहोल व स्वस्थ वातावरण भी मिलना चाहिए कि जिससे उनकी प्रभावशीलता बढ़े।

अध्यापक अपने व्यवसाय से यदि संतुष्ट नहीं होंगे तो इसका असर निश्चित रूप से विद्यार्थियों के उपर भी दिखाई देगा। प्राथमिक शिक्षा की सफलता के लिए इस समस्या का निराकरण अत्यंत आवश्यक है। इसलिए प्रस्तुत शोध अध्ययन का शीर्षक है प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की अध्यापन अभिवृत्ति एवम् व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन।

1.4 प्रस्तुत शोध अध्ययन की आवश्यकता एवम् महत्व

संपूर्ण शिक्षा प्रणाली की प्रक्रिया की श्रृंखला में अध्यापक की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। अध्यापक को शिक्षा रूपी मशीन का ''फ्लाई व्हील'' कहा गया है। वह ही अपने बालक की योग्यता, रूचि एवं आयु के अनुकूल उसके लक्ष्य को निर्धारित करके उसकी प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करता है तथा उस पाठ्यक्रम को उत्तम विधियों से बालक को हृदयंगम कराकर उसके निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायता देता है।

शासकीय स्तर पर शिक्षा की चाहे कितनी ही योजना बना ली जाए, किन्तु अध्यापक यदि उसे ठीक ढंग से कार्यान्वित न करे तो वह योजना कदापि सफल नहीं हो सकती। प्राथमिक स्तर पर विशेष ध्यान रखते हुए बालको में शिक्षा का संस्कार बोने की जिम्मेदारी अध्यापक पर ही होती है। प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का दायित्व और भी अधिक बढ़ जाता है क्योंकि उनका संबंध उन सुकोमल बालकों से है जिन पर संपूर्ण शिक्षा की नींव रखी जाती है। छात्रों के सामने अध्यापक एक आदर्श होता हैं। अध्यापक ही शिक्षा का आधार स्तंभ है। शिक्षा के हर कार्य में वह नेतृत्व करता है। इसी प्रकार अध्यापक को समाज नेतृत्व करने वाला समाज रचयिता कहा जाता है।

प्रायः प्राथमिक विद्यालयों में देखा गया है कि जो अध्यापक कार्यरत हैं उनमें से कुछ इस प्रकार के है जो किसी अन्य क्षेत्र में नौकरी न पाने के

कारण इस व्यवसाय में लगे हुए हैं एवम् शिक्षण कार्य केवल इसी दृष्टि से कर रहे हैं कि वे इसके लिए पैसा पाते हैं, उन्हें छात्रों की उन्नति एवं अवनति से कोई विशेष प्रयोजन नहीं है। कुछ ऐसे भी अध्यापक है जो केवल इसीलिए इस व्यवसाय में लगे हैं कि वह अपने अन्य घरेलू व्यवसाय की देख–रेख भी कर सकते है। कुछ ऐसे भी अध्यापक हैं जो आयु से अधिक हो गए हैं जिस कारण अन्य कोई व्यवसाय न मिलने के कारण मजबूरी समझकर इस व्यवसाय में रह रहे है। इन सभी बातों से यही तथ्य निकलता है कि शिक्षण व्यवसाय में लगे हुए व्यक्ति अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति चाहते हैं। यदि उनकी आवश्यकता की पूर्ति उक्त व्यवसाय से होती हैं तो निश्चित ही वे अपनी व्यवसाय के प्रति अभिवृत्त होंगे और अपने व्यवसाय से वे पूर्णतया संतुष्ट भी रहेंगे।

मानव समाज में शिक्षक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। संपूर्ण मानव जाति की उन्नति के लिए शिक्षक गण आदि काल से ही प्रयत्न करते आये हैं और मानव उत्थान के पुनीत कार्य में अपना जीवन अर्पित करते रहे हैं। मनुष्य अपनी वर्तमान उन्नत अवस्था एवं सभ्यता के लिए बहुत अंशो तक उन अध्यापकों का ऋणी है जो समय समय पर अपनी शिक्षा तथा जीवन के आदर्शो से उसे पोषित करते रहे हैं। जीवन के लक्ष्य एवं उद्देश्यों की प्राप्ति में उनका नेतृत्व मनुष्य को सफलता पूर्वक अग्रसर करता रहा है। उसे उन्हीं से स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती आई है। इस दृष्टि से मनुष्य अपने शिक्षकों का चिर ऋणी रहेगा।

महान दार्शनिक एवं विचारक अरविन्द घोष ने भी शिक्षक के बारे में कहा है "अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति का चतुर माली होता है जो संस्कारों की जड़ों में अपने ज्ञान की खाद देते हैं और अपने श्रम से सींच–सींच कर उन्हें महाप्राण शक्तियाँ बना देते हैं।"

जिस प्रकार बाग में माली पौधों के विकास के लिए उचित वातावरण तैयार करता है, उसी प्रकार विद्यालयों में अध्यापकों को बालकों के समुचित

विकास के लिए उचित वातावरण तैयार करना होता है। किन्तु यदि माली अपने कार्य के प्रति अभिवृत्ति नहीं रखता और संतुष्ट नहीं रहता तो क्या वह पौधों के विकास में पूरा योगदान दे सकेगा?

अध्यापक किसी भी महान पुरूष की अपेक्षा बड़ा होता है। क्योंकि महानतम व्यक्तियों को अध्यापक ही पढाता है। उपरोक्त बातें हमें इस बात की ओर खींचती जा रही है कि शिक्षा कार्य में अध्यापक की भूमिका सर्वश्रेष्ठ है उसी पर सारे समाज व छात्रों का विश्वास है। हमारे देश को अगर अच्छा जीवन फिर से कोई प्रदान कर सकता है तो वह है अध्यापक। लेकिन वर्तमान स्थिति के अनुसार कोई भी माता-पिता अपने बच्चों को अध्यापक बनाना नहीं चाहते सभी को लगता है कि अपने बच्चे डॉक्टर, इन्जीनियर बने। जब सारे रास्ते बंद होते हैं तब वह शिक्षक का पेशा स्वीकार करते हैं। इसका भी अध्यापन पर प्रभाव पडता है। और वे अपने कार्य से संतुष्ट नहीं हो पाते।

किसी भी स्तर पर व्यक्ति को विवशता की स्थिति मानकर अध्यापक नहीं बनना चाहिए। इस व्यवसाय के प्रति तभी उन्मुख होना चाहिए जब अध्यापन के प्रति रूचि हो तथा इस कार्य को गौरवपूर्ण माना जाए। कुछ ऐसे भी अध्यापक देखने में आए हैं जो अवसर की तलाश में रहते हैं जब वे किसी अन्य व्यवसाय को अपना सकें। ऐसे व्यक्ति कभी भी निष्ठावान अध्यापक नहीं बन सकते और वे जीवन में कभी भी सुखी नहीं रह पाते हैं। हम जहाँ भी हैं अगर पूरी निष्ठा से काम करें तो हमें परम संतोष प्राप्त होता है।

किन्तु अपने महान कार्य एवं दैवी शक्तियों के प्रयोग में ये अध्यापक तभी रूचिपूर्वक संलग्न हो सकते हैं जबकि समाज उसके कार्य के अनुरूप आदर एवं प्रतिष्ठा प्रदान करेगा। आज का समाज उन्हें आधा पेट खाकर आधा तन ढक कर जनतंत्र की सेवा में लगा रहने वाला नागरिक समझे हुए है। यह सही है कि अध्यापक विशेषकर प्राथमिक स्तर के, एक अधिकार हीन परिवेश में काम करते हैं। दिल्ली के टाऊन होल में बैठा लिपिक भी उन्हें हिकारत भरी नजरों और भाव से देखता है। यह भी सही है कि उन्हें पर्याप्त पठन-पाठन

की सामग्री मिलना तो दूर विद्यालय की ढाँचेगत सुविधाएँ भी सुलभ नहीं हो पाती। इस सत्य को भी नकारना मुश्किल है कि बच्चों से अन्तःक्रिया करने व अध्यापन के कार्य को छोड़कर अधिकारी वर्ग द्वारा उनसे वे तमाम कार्य करवाए जाते हैं जिनका बच्चों की शिक्षा से कोई लेना देना नहीं। कितनी हास्यास्पद बात है कि संपूर्ण समाज एवं राष्ट्र का निर्माणकर्ता जीवन के निम्न स्तर में पड़ा हुआ है फिर भी समाज उससे राष्ट्र निर्माण की आशा लगाए हुए है।

शिक्षकों के महत्व एवं वर्तमान समय में उनकी स्थिति को भली-भाँति समझ लेने के पश्चात यह पता लगाना अति आवश्यक है कि अध्यापक अपने अध्यापन कार्य के प्रति अभिवृत्ति रखते हैं या नहीं और अपने इस कार्य से वे कहाँ तक संतुष्ट है। इस तथ्य का वैज्ञानिक रीति से पता लगाने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है। इसी हेतु यह अनुसंधान कार्य किया गया है।

वर्तमान समय में यह नितान्त आवश्यक है कि शिक्षा प्रदान करने के लिए ऐसे ही व्यक्ति नियुक्त किये जाए जो अपने प्राचीन आदर्शो पर चलकर अपने महत्व को यथावत् बनाये रखें। विशेषकर प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के चुनाव में और भी सतर्कता रखने की आवश्यकता है क्योंकि इन शिक्षकों का बालक पर अमीट प्रभाव पडता है। भावि अध्यापकों को यह बात याद रखनी होगी कि अध्यापक बन जाना जितना सरल है अध्यापक बना रहना उतना ही कठिन हैं। इस ओर कदम बढ़ाने से पहले भली भाँति सोच लेना चाहिए।

प्रस्तुत अनुसंधान का महत्व एवं शैक्षिक उपादेयता एक सफल शिक्षक के महत्व और उसकी शैक्षिक उपादेयता से संबंध रखती है। अध्यापक की सफलता एवं असफलता ही शिक्षा प्रक्रिया की सफलता एवं असफलता है किन्तु शिक्षक की सफलता एवं असफलता के मानक क्या है? यह प्रश्न विवादस्पद है। क्या अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण शिक्षक ही सफल शिक्षक है या अच्छा परीक्षाफल लाने वाला शिक्षक ही सफल शिक्षक है, यदि निरपेक्ष ढंग से देखा जाय तो शिक्षक की सफलता एवं असफलता के द्योतक उसके द्वारा शिक्षित किये गए छात्र हैं। यदि शिक्षक द्वारा शिक्षित छात्रों का सर्वांगीण विकास हुआ

है, छात्र अपनी सामाजिक एवं वैयक्तिक परिस्थितियों में अपना समायोजन कर लेता है तो निश्चित ही वह शिक्षक अपने स्थान पर पूर्ण सफल है। किन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति तभी संभव है जबकि अध्यापन कार्य में लगे हुए व्यक्ति अपने व्यवसाय के प्रति उचित अभिवृत्ति रखेंगे और अपने व्यवसाय से पूर्णतया संतुष्ट होंगे तथा इस व्यवसाय को महान कार्य के रूप मे अपनायेंगे।

1.5 शोध में प्रयुक्त शब्दावली की परिभाषा

1.5.1 प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक

प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र गुजरात राज्य है। गुजरात राज्य में प्राथमिक विद्यालयों के अंतर्गत 1 से 7 कक्षा को ही स्थान दिया गया है। प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक यानि कि जो स्थायी रूप से अध्यापन व्यवसाय से जुड़े है और पूर्ण वेतन प्राप्त कर रहे हैं। ऐसे अध्यापकों को ही अध्ययन में शामिल किया गया है।

1.5.2 अध्यापन अभिवृत्ति

किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा विचार के प्रति व्यक्ति किस प्रकार का व्यवहार करेगा यह बहुत कुछ उस व्यक्ति की उनके प्रति बनी अभिवृत्तियों पर निर्भर करता है। व्यवहार ही नही व्यक्ति का संपूर्ण व्यक्तित्व भी उसकी अभिवृत्तियों के अनुकूल ही ढलता है। जो कुछ भी व्यक्ति सीखता है और आदतों तथा रूचि आदि को ग्रहण करता हैं। वे सभी उसकी अभिवृत्तियों द्वारा प्रभावित होते हैं।

मकेशी ने कहा है कि अभिवृत्ति को हम किसी एक वस्तु से जुडे हुए प्रत्ययों, विश्वासो, आदतों और अभिप्रेरणाओं के संगठन के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। अर्थात् वस्तु के प्रति बनी हुई समस्त धारणाओं, विश्वासो, आदतों और अभिप्रणाओं को अभिवृत्ति के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। ये एक प्रकार से अभिवृत्ति के विभिन्न अवयवों का निर्माण करते हैं। अभिवृत्ति के मुख्य रूप से तीन अवयव विचारात्मक, क्रियात्मक और प्रभावात्मक होते हैं। धारणाओं, प्रत्ययों विश्वासो का संबंध विचारात्मक अवयव से हैं। आदतों का क्रियात्मक तथां अभिप्रेरणाओं का प्रभावात्मक अवयवों से

सीधा संबंध होता है। इस रूप से व्यक्ति जो भी किसी वस्तु के बारे में सोचता है, अनुभव करता है और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, यह सब उसकी उस वस्तु के प्रति अभिवृत्ति को ही व्यक्त करता है।

टेलर्स ने कहा है, कि व्यवहार को कोई दिशा प्रदान करने वाली प्रतिक्रिया के लिए आवश्यक तत्परता का नाम अभिवृत्ति है। अर्थात् अगर किसी को किसी वस्तु के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति है तो वह उस वस्तु के प्रति आकर्षित होगा उसे पाने के लिए प्रयत्न करेगा और अगर नकारात्मक अभिवृत्ति हुई तो उससे दूर भागेगा और यहां तक कि वह उसके नाम से ही चिढ़ने या उत्तेजित होने लगेगा।

अभिवृत्ति पूर्ण नियोजन अथवा तत्परता की वह व्यवस्था है जो सार्थक उद्दीपकों के प्रति पूर्व निश्चित तरीके से प्रतिक्रिया करने में सहायक होती है। अर्थात् अभिवृत्ति को ऐसी प्रवृत्ति या तैयारी की मानसिक या शारीरिक अवस्था मानी जाती है जो व्यक्ति को किसी एक परिस्थिति में एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करने को प्रेरित करती है।

अभिवृत्ति किसी वस्तु के प्रति एक विशिष्ट भावना है। इसलिए इसमें उस वस्तु चाहे वह व्यक्ति विचार या पदार्थ कुछ भी हो, उससे जुडी हुई परिस्थितियों में एक निश्चित प्रकार से व्यवहार करने की प्रवृत्ति निहित होती है। यह आंशिक रूप में तार्किक और आंशिक संवेगात्मक होती है तथा किसी भी व्यक्ति में जन्मजात न होकर उपार्जित होती है। अनुभव के द्वारा वातावरण ही इन्हें सिखाता है।

प्रस्तुत अनुसंधान में अभिवृत्ति का आशय शिक्षकों के द्वारा व्यक्त मन से लिया गया है। शिक्षकों का दृष्टिकोण किसी प्रकार के व्यवहार को दिशा प्रदान करने वाली वह अर्जित प्रवृत्ति है जो किसी विशेष वस्तु के प्रति एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करने को तत्पर करती है बशर्ते कि वातावरण, जन्म परिस्थितियों में कोई प्रतिकूल परिवर्तन न हो। यह पूर्व धारणा होती है कि जो उसके प्रति सकारात्मक या नकारात्मक ढ़ंग से प्रतिक्रियाएँ करवाती हैं। प्रस्तुत अनुसंधान में अध्यापन व्यवसाय संबंधी छः अभिवृत्तियों का समावेश किया गया है।

1. अध्यापन व्यवसाय संबंधी।
2. कक्षाध्यापन संबंधी।
3. छात्र केन्द्रित व्यवहारों संबंधी।
4. शैक्षिक प्रक्रिया संबंधी।
5. छात्रों संबंधी।
6. अध्यापकों संबंधी।

अध्यापन व्यवसाय

परंपरागत चार प्रमुख व्यवसाय कानून, शिक्षा, धर्म और चिकित्सा में से शिक्षा एक व्यवसाय के रूप में स्वीकृत हुआ है। इस व्यवहार को व्यवसाय के रूप में अपनाने की प्रबल इच्छा हो वही व्यक्ति प्रभावी ढंग से कार्य कर सकता है। जिस व्यक्ति में मानव अधिकारों के प्रति आस्था, सह-कर्मीयों के प्रति आदर की भावना, कार्य के प्रति ईमानदारी, विद्यालय के प्रति कर्तव्यपरायणता तथा सामाजिक मूल्यों की वृद्धि करने की दृढ़ भावना हो तो वह व्यवसाय में सफल हो सकता है।

कक्षाध्यापन

प्राचीनकाल से अध्यापन का यह तरीका रहा है कि एक अध्यापक अनेक छात्रों को कक्षा में एकसाथ पढ़ाता है। कक्षा में सामूहिक शिक्षण की यह प्रणाली आज भी वैसी की वैसी चली आ रही है। नए कौशल और नया ज्ञान देने में तथा सर्वनिष्ठ त्रुटियों और गलतीयों को सुधारने में यह बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है।

छात्रों के प्रति व्यवहार

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि जिससे छात्रों का स्वाभाविक विकास हो और उनकी आवश्यकताएँ, रूचि, योग्यताओं का योग्य स्थान हो। अध्यापन छात्र केन्द्रित होना चाहिए। शिक्षा का केन्द्र बिंदु न तो अध्यापक हो न ही विषयवस्तु। छात्रों को अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए।

शैक्षिक प्रक्रिया

किसी शैक्षिक संस्था में छात्रों को पढ़ाने या सीखाने की प्रक्रिया को शैक्षिक प्रक्रिया कहा जाता है। ऐसी परिस्थितियाँ, क्रियाएँ, पद्धतिओं की

व्यवस्था करना कि जिससे बालक सीख सके। ऐसा जीवन्त माहोल जिससे छात्र स्वयं सीख सके और उसमें सहायक बनने का कार्य अध्यापक का हो।

छात्रः–

छात्र यानि कि विद्यार्थी। विद्या का अर्थी। विद्या प्राप्त करना जिसका मूल ध्येय है। शाला के प्रति आदर, सहपाठियों के प्रति स्नेह व भाईचारा, अध्यापकों के प्रति सम्मान, कार्यनिष्ठा आदि विशेषताएँ जिसमें हो वह बालक।

अध्यापक

अध्यापक यानि की शिक्षा प्रदान करने वाला, राष्ट्र के नैतिक मार्गो का निर्धारण करने वाला महत्वपूर्ण व्यक्ति। अध्यापक वह है जो बच्चों की अंतर्निहित सूक्ष्म संवेदना व क्षमता को स्पंदित करता है उसे जगाता है और उसके भविष्य को दिशा प्रदान करता है। समाज में सदैव आदरणीय, पूजनीय व्यक्ति के रूप में ही उसको सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया जाता है।

1.5.3 व्यावसायिक संतुष्टि

इसमें दो शब्द प्रयुक्त है, व्यवसाय और संतुष्टि। व्यवसाय से हमारा तात्पर्य किसी कार्य विशेष से है। व्यक्ति जिस कार्य में संलग्न रहकर अपने जीविकोपार्जन के लिए धन प्राप्त करता है वही उसका व्यवसाय है।

संतुष्टि एक व्यापक शब्द है जिसका अर्थ ही विवादास्पद है। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार परित्याग ही संतोष है। अर्थात् इच्छा रहित अवस्था ही संतोष की अवस्था है। परन्तु यह चरम स्थिति सामान्य व्यक्ति को प्राप्त नहीं है। समाज में विरले ही इस स्थिति को प्राप्त करते हैं। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए चिंतन, मनन एवं त्याग की भावना की आवश्यकता होती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से हम संतुष्टि का आवश्यकताओं के संबंध में ही अध्ययन करते हैं। मनुष्य की आवश्यकताओं का वर्गीकरण मेस्लो महोदय के अनुसार पाँच अवस्थाओं में किया गया है।

1. मूल शारीरिक आवश्यकताएँ,
2. सुरक्षा एवं बचाव,
3. प्रेम एवं सामाजिकता,
4. आत्मसम्मान की भावना,
5. आत्मानुभूति।

Regional Institute of Education
LIBRARY
Bhopal

हर व्यक्ति अपने व्यवसाय से इन आवश्यकताओं की पूर्ति चाहता है इसीलिए वह व्यवसाय से संलग्न रहकर परिश्रम एवं कार्य करता है। इन आवश्यकताओं की जब किसी व्यवसाय से पूर्ति होती है तो उसे व्यावसायिक संतोष कहा जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संतुष्टि का दार्शनिक दृष्टिकोण अति व्यापक है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के मुताबिक व्यक्तियों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति यदि किसी व्यवसाय से होती है तो उससे संलग्न कर्मचारियों को व्यवसायिक संतोष होगा। यदि उन कर्मचारियों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति उक्त व्यवसाय से नहीं होती तो उससे संलग्न व्यक्तियों को व्यावसायिक संतोष नहीं होगा।

प्रस्तुत अनुसंधान में प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की व्यवसायिक संतुष्टि का उपरोक्त मनोवैज्ञानिक अर्थ विशेष रूप से स्वीकार किया जाता है। यहाँ एक बात ध्यान रखने योग्य है कि विकास एवं परिपक्वता के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ भी विस्तृत एवं परिवर्तित होती रहती हैं। इसलिए व्यावसायिक संतुष्टि के लिए यह भी आवश्यक है कि विकास के अनुसार परिवर्तन एवं विस्तृत आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता भी व्यवसाय में सन्निहित हो।

1.6 शोध के चर

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु अध्यापन अभिवृत्ति, व्यावसायिक संतुष्टि एवं लिंग को चर के रूप में चयनित किया गया है।

1.7 शोध के उद्देश्य

1. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की अध्यापन अभिवृत्ति का अनुमापन करना।
2. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि को ज्ञात करना।
3. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की अध्यापन अभिवृत्ति और व्यावसायिक संतुष्टि के मध्य संबंध ज्ञात करना।
4. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की अध्यापन अभिवृत्ति को सकारात्मक एवम् नकारात्मक अध्यापन अभिवृत्ति में वर्गीकृत करना।

5. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की सकारात्मक अध्यापन अभिवृत्ति का व्यावसायिक संतुष्टि के साथ संबंध जानना।
6. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की नकारात्मक अध्यापन अभिवृत्ति और व्यावसायिक संतुष्टि के मध्य संबंध ज्ञात करना।
7. प्राथमिक विद्यालयों के महिला एवम् पुरूष अध्यापकों की अध्यापन अभिवृत्ति में अंतर ज्ञात करना।
8. प्राथमिक विद्यालयों के महिला एवम् पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि में अंतर ज्ञात करना।

1.8 अनुसंधान की परिकल्पनाएँ

1. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की अध्यापन अभिवृत्ति एवम् व्यावसायिक संतुष्टि के मध्य सार्थक संबंध नहीं होगा।
2. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की सकारात्मक अध्यापन अभिवृत्ति एवम् व्यावसायिक संतुष्टि के मध्य सार्थक संबंध नहीं होगा।
3. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की नकारात्मक अध्यापन अभिवृत्ति एवम् व्यावसायिक संतुष्टि के बीच सार्थक संबंध नहीं होगा।
4. प्राथमिक विद्यालयों के महिला एवम् पुरूष अध्यापकों की अध्यापन अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं होगा।
5. प्राथमिक विद्यालयों के महिला एवम् पुरूष अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि में सार्थक अंतर नहीं होगा।

1.9 समस्या का सीमांकन

1. प्रस्तुत शोध कार्य गुजरात राज्य तक ही सीमित है।
2. शोध कार्य के लिए गुजरात के सुरेन्द्रनगर जिले के तीन तहसीलों का ही चयन किया गया है।
3. शोध कार्य के लिए केवल पन्द्रह प्राथमिक विद्यालयों का ही चयन किया गया है।
4. शोध कार्य के लिए शासकीय प्राथमिक शालाओं के पूर्ण वेतन प्राप्त कर रहे अध्यापकों का ही चयन किया गया है।